International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 184-186

आरक्षण : समीक्षा की आवश्यकता

डॉ0 आलोक कुमार सिंह
अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, डी0एन0 पी0जी0 कॉलेज, फतेहगढ, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय संविधान का निर्माण सबकी स्वतन्त्रता, सबकी समानता व पारस्परिक भ्रातुत्व की मान्यता के आधार पर हुआ है। उसमें केवल संविधान निर्माण के समय से ही सबके लिए अवसर की समानता की प्रत्याभूति नहीं की गई, वरन् प्राचीनकाल से चली आ रही सामाजिक असमानता को भी दूर करने के प्रयत्न का समावेश किया गया है। भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जब नवीन संविधान का निर्माण किया गया। उस समय समाज की कुछ जातियों की स्थिति इतनी पिछड़ी हुई थी कि सबके साथ अवसर की समानता दिए जाने ही से वे सबके समान स्तर पर नहीं आ सकती थी। अतः उन्हें राष्ट्रीय स्तर तक लाने के लिए विवेकपूर्ण संरक्षण, सहायता तथा निश्चयात्मक कार्ययोजना की आवश्यकता महसूस की गई।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 341 तथा 342 में प्रावधान किया गया। अनुच्छेद 15(4), 16(4) तथा 46 के अनुसार समाज के पिछडे तथा कमजोर वर्गों को विशेष सहूलियत देने की व्यवस्था की गई। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा आंग्ल भारतीयों के लिए विशेष रूप से 10 वर्षों के लिए, संविधान के अनुच्छेद 331–334 द्वारा लोकसभा व राज्यों की विधानसभाओं में स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था का उपवंध किया गया जो आज तक जारी है। बाद में सन् 1951 ई0 में भारतीय सरकार द्वारा प्रथम संविधान संशोधन द्वारा सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए भी विशेष कानून बनाने का प्रस्ताव पारित कराया गया। अन्य पिछड़े वर्गों के लिए यह प्रावधान अनच्छेद 340 में किया गया।

वस्तुतः सदियों की असमानतावादी, परम्परागत एवं दोषपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अव्यवस्थाओं के शिकार व दबे–कुचले लोगों के कल्याण के लिए भारतीय संविधान में की गई इन विशेष व्यवस्थाओं को आरक्षण की संज्ञा दी जाती है। राजनीतिज्ञ आरक्षण को वोट–बैंक के स्त्रोत के रूप में, पिछड़ी जातियाँ अपने विकास की सीढ़ी के रूप में, तो अगड़ी जातियाँ इसे अपना भविष्य अंधकारमय बनाने वाला मानती हैं। अब तो मामला आरक्षण में आरक्षण तक पहुॅच चुका है। महिला आरक्षण, गुर्जर जातियों के लिए आरक्षण, मुस्लिम–आरक्षण आदि आरक्षण में आरक्षण के ही उदाहरण हैं। दूसरी ओर नौकरियों में आरक्षण के बाद शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण और प्रोन्नति में भी आरक्षण, साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर संवर्णों के आरक्षण की मांग उठने के बाद तो लगभग संपूर्ण समाज ही इसमें अधिव्याप्त है। यही कारण है कि समाज का प्रबुद्ध वर्ग आरक्षण पर एक राष्ट्रीय नीति–निर्धारण की तीव्र आवश्यकता रेखांकित करता रहा है।

समाजिक उत्थान एक क्रान्तिकारी विचार है। सैद्धान्तिक रूप से सामाजिक उत्थान का अर्थ शोषित व्यक्तियों के जीवन की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक असमानताओं को दूर करने के एक माध्यम के रूप में लगाया जाता है। भारत में सामाजिक उत्थान का अर्थ संकीर्ण और विस्तृत दोनों अर्थों में लगाया जाता है। वास्तव में देखा जाए तो सामाजिक उत्थान के व्यापक अर्थ में वंचित वर्ग वह है जो आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षणिक सुविधाओं से वंचित है, परन्तु जहॉ सामाजिक उत्थान का संकीर्ण अर्थ लगाया जाता है वहॉ वर्ग शब्द जाति के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा वंचित वर्ग के अन्तर्गत वंचित जातियों को रखा जाता है। यह एक पक्षपातपूर्ण एवं हास्यात्पद धारणा है।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 26 जनवरी, 1950 अर्थात् जब से हमारे देश का संविधान लागू हुआ तब से दस वर्ष के लिए वंचित वर्ग के सामाजिक उत्थान हेतु आरक्षण की व्यवस्था की गई जो आज लगभग 70 वर्षों के बाद भी लागू है। इसका सामाजिक उत्थान में कितना योगदान है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि वंचित वर्ग जब वंचित जाति के रूप में परिवर्तित हो चुका है तो अब यह वर्ग न शोषित हैं और न ही पिछड़ा। आरक्षरण की नीति के परिणामस्वरूप देश की सरकारी नौकरियों में विशेषकर प्रशासनिक सेवाओं में इनका योगदान निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह इनके सामाजिक उत्थान का प्रतीक है। इस प्रकार इस संरक्षणात्मक नीति के फलस्वरूप इस वर्ग ने अपना पर्याप्त आर्थिक व सामाजिक उत्थान किया है। पुनः जहाँ सामाजिक उत्थान के अन्तर्गत राजनीतिक उत्थान की बात है तो इस क्षेत्र में भी इस तथाकथित वंचित वर्ग ने अपना सिक्का जमा लिया है।

आज समस्त देश की राजनीति में यह वंचित वर्ग छाया हुआ है। अब जब यह वंचित वर्ग शासक वर्ग बन चुका है तो इनका सामाजिक उत्थान हो जाना स्वाभाविक ही है। किन्तु आरक्षण से सच्चे अर्थों में वंचित वर्ग का विकास हो रहा है अथवा वे समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष आ रहे हैं, यह सोचना भ्रान्तिपूर्ण है। वह एक मूल प्रश्न है कि पिछड़ेपन की जातिगत पहचान कैसे संभव है? विशेष रूप से उस देश में जहाँ सरकारी आँकड़ों के अनुसार ही लगभग 40 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं।

आरक्षण सामाजिक न्याय की जरूरत है ऐसा सामाजिक विश्लेषक मानते हैं। इसके लिए वे इस तर्क को भी खारिज करते हैं कि ऐसे उम्मीदवारों के चयन से गुणवत्ता में कोई कमी आएगी। समर्थन में दक्षिण का उदारण तथा अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को दिए गये आरक्षण से प्राप्त अनुभवों को पेश किया जाता है। सामाजिक विश्लेषक योगेन्द्र यादव योग्यता के प्रश्न पर जोर देकर कहते हैं कि 20 वर्ष एवं ऊपर के आयु वर्ग में अन्य पिछड़ा वर्ग से शहरों में 8.6 प्रतिशत स्नातक हैं और ऊँची जातियों से 25.3 प्रतिशत तो इसका अर्थ यह नहीं है कि ऊँची जातियों के छात्र ज्यादा योग्य हैं बल्कि इसका सीधा अर्थ है कि उन्हें आधारभूत सुविधाएं ज्यादा प्राप्त हैं। ऐसे समर्थनों के बावजूद इन्हीं सामाजिक विश्लेषकों का यह भी मानना है कि सामाजिक न्याय की वर्तमान पद्धति पूर्णतया न्यायपूर्ण नहीं है। प्रत्येक वर्ग की गरीव जनसंख्या/जातियाँ आज भी वंचित हैं। क्रीमीलेयर को आरक्षण से पृथक किया गया है किन्तु एक विशेष प्रकार का क्रीमीलेयर ही आरक्षण से लाभान्वित हो रहा है। इसके लिए सभी वर्गों में गरीबी रेखा से नीचे के लोगों को सबसे पहले, आरक्षण की प्रथम शर्त होनी चाहिए। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण में ऐसे नागरिकों की संख्या लगभग 26 प्रतिशत बतायी गई है।

सामाजिक विश्लेषक आरक्षण के तरीके को लेकर अनेक समाधान

बताते हैं मसलन प्रत्येक जाति वर्ग के गरीबों को आरक्षण देना या प्रत्येक व्यक्तियों को उसकी सामाजिक/आर्थिक स्थिति के अनुरूप आरक्षण हेतु वरीयता अंक प्रदान करना आदि। द हिन्दू समाचार पत्र में सामाजिक विश्लेषक सतीश देशपाण्डे एवं योगेन्द्र यादव ने आलेख प्रस्तुत कर आरक्षण का एक वैकल्पिक प्रस्ताव पेश किया है। प्रस्ताव के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को उसकी जाति, समुदाय, क्षेत्र, लिंग एवं स्कूली शिक्षा तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर आरक्षण में वरीयता अंक प्रदान किए जाएं और तदनुरूप उन्हें आरक्षण का लाभ प्राप्त हो। आरक्षण की कोई भी नीति लागू कर दी जाए दो वर्ग सदैव रहेंगे, एक आरक्षण का लाभार्थी एवं दूसरा जिसने इसके कारण कुछ खोया है। वस्तुतः असल समस्या सामाजिक सद्भाव की है, जिसकी ओर राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने आरक्षण के प्रश्न पर सरकार को प्रेषित अपनी रिपोर्ट में संकेत किया है।

राष्ट्रीय ज्ञान आयोग के अध्यक्ष सैम पित्रोदा ने 8 सदस्यीय आयोग की रिपोर्ट को 6–2 के बहुमत से सरकार को सौंपते हुए बताया कि आरक्षण के संबंध में यथास्थिति बनाए रखना चाहिए। श्री पित्रोदा के अनुसार एक ज्ञान आधारित समाज में सामाजिक संम्मिलन आवश्यक है और यह सामाजिक सम्मिलन शैक्षणिक संस्थानों में भी प्रदर्शित होना चाहिए। इसके लिए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग अपनी ओर से कोई फार्मूला सुझाने के लिए प्रयासरत है।

मंडल आयोग ने सरकारी सेवाओं में अन्य पिछड़े वर्गों के आरक्षण के साथ अन्य दर्जनों अनुसंशाएं भी की थीं, जैसे–

1. शैक्षणिक संस्थाओं में आरक्षण
2. पृथक कोचिंग, सुविधाएं, उन छात्रों के लिए जो तकनीकी एवं व्यावसायिक संस्थानों में प्रवेश चाहते हों।
3. ऐसी शैक्षिक सुविधाएं जो पिछड़ी जाति के छात्रों के शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक बातावरण का समुन्नयन कर सकें।
4. प्रगतिशील भूमि सुधार।
5. पिछड़ी वर्ग के उद्यमियों को वित्तीय एवं तकनीकबी सुविधाएं।
6. ग्रामीण लघु उद्यमियों को लोन एवं सब्सिडी।

मंडल संदेश से स्पष्ट है कि अन्य पिछड़ी जातियों को चौतरफा सुविधाएं प्रदान कर उन्हें समाज के उच्च वर्गों के समकक्ष लाया जाए। मंडल रिपोर्ट में भी इसके लिए 20 वर्ष की समयावधि तय की गई थी। मूल विचार यह है कि सेवाओं में आरक्षण, शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण के बिना अतार्किक है और शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण, बिना आवश्यक पृष्ठभूमि के अतार्किक है। लेकिन सरकार ने मंडल रिपोर्ट लागू करने में अवरोही क्रम चुना अर्थात सबसे पहले सेवाओं में आरक्षण, तत्पश्चात शैक्षणिक सेवाओं में आरक्षण। अब शायद ऐसी आर्थिक एवं शैक्षणिक पृष्ठभूमि बनाने की कोशिश की जाएगी जिससे पिछड़े वर्ग के छात्र शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश योग्य हो सके।

यह स्पष्ट है कि जातिगत आरक्षण के सामाजिक–ऐतिहासिक तर्क है और यह भी सच है कि इसकी आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक कि समाज सभ्यता की स्थिति में नहीं आ जाता। एक बार सामाजिक सभ्यता की स्थिति प्राप्त कर लेने के बाद जाति व्यवस्था स्वतः समाप्त हो जाएगी। लेकिन इसी बीच सरकार जिसका कि सामाजिक सभ्यता की स्थिति प्राप्त करने हेतु प्रयास का कर्तब्य है, ने जातियों के विकास हेतु आरक्षण का अवरोही क्रम लागू कर विषम स्थिति उत्पन्न कर दी है।

आज आरक्षण से लाभान्वित होकर इन्हीं जातियों का एक वर्ग ऐसा विशिष्ट वर्ग वन चुका है जो आरक्षण का लाभ नीचे की ओर जाने से रोकता है। इस वर्ग को आरक्षण कहीं न कहीं उच्च जातियों के उस वर्ग से दंश भी भरता है। जिनकी आर्थिक–सामाजिक स्थिति निचले पायदान पर पहुंच चुकी है। ऐसी स्थिति में आरक्षण का नया एवं सर्वस्वीकार्य फार्मूला आज की ऐतिहासिक जरूरत है। जरूरत है सभी को इस दिशा में ईमानदार कोशिश करने की, जिससे 21वीं सदी में सामाजिक सभ्यता की स्थिति प्राप्त की जा सके। निष्चय ही इसके लिए एक समयवद्ध कार्यक्रम आवश्यक है और थोड़ा भी विलम्ब घातक हो सकता है।`

समकालीन भारत में राजनीतिक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों के बाबजूद निष्पक्ष एवं व्यावहारिक रूप में सामाजिक उत्थान करना चिन्तनशील बुद्धिजीवियों के समक्ष एक चुनौती है, स्मरणीय है कि सामाजिक उत्थान एक समतावादी विचार है, जिसे प्राप्त करना मनुष्य का मूलभूत अधिकार है और वह एक अर्जित प्रक्रिया भी है। परन्तु भारतीय परिवेश में इस अर्जित प्रक्रिया को आरक्षण प्रदत्त प्रक्रिया बनाने का 'भगीरथ प्रयास' हमारे राजनेताओं द्वारा प्रारम्भ से ही किया जाता रहा है।

यह सत्य है कि संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्रता, समानता और न्याय के सिद्धान्तों की जोरदार चर्चा की गई है। किन्तु संविधान निर्माताओं की आशा यही थी कि संविधान में प्रदान किए गए कतिपय अधिकारों का प्रयोग वंचित वर्ग ही कर सकता है। संवैधानिक वकील यह मानते हैं कि मौलिक अधिकार का पारित किया जाना ही सामाजिक उत्थान का प्रतीक है। वर्तमान राजनीतिज्ञ आरक्षण लागू करने को ही सामाजिक उत्थान का प्रतीक समझते हैं तो आखिर आरक्षण से भारत की गरीब, भूखी, नंगी और उत्पीड़ित जनता की रोटी के लिए कोई फायदा क्यों नहीं हो रहा है? आज भी वंचित वर्ग प्रसन्नतापूर्वक बेगार क्यों करता है? श्रेष्ठ जनों के सम्मुख आसन ग्रहा करने में और सुरूचिपूर्ण वस्त्र धारण करने में संकोच क्यों अनुभव करता है? व्यवस्था में परिवर्तन आया है, परन्तु मात्र नगरों में अथवा उस सम्पन्न वर्ग के लिए जो वंचित था, किन्तु अब वह अथाह धन–सम्पदा का स्वामी है। सामाजिक उत्थान की प्राप्ति के लिए लागू की गई योजनाओं में लगभग 90 प्रतिशत लाभार्थी इसी वर्ग के आते हैं। सामाजिक न्याय के प्राप्तार्थ वंचित वर्ग की हीनता की मानसिकता का अन्त नहीं हुआ है और न उन्हें अहं ब्रह्मास्मि सूक्ति का अनुभव है। क्योंकि वंचित वर्ग कभी भी सीमित अधिकारों से ऊपर नहीं उठ सका है।

वंचित वर्ग को आरक्षण मात्र देने से कर्तब्यों की इतिश्री नहीं हो जाती है। इस वर्ग के मानसिक एवं शैक्षणिक विकास के सतत् व सार्थक प्रयास ही उन्हें संकीर्ण सामाजिक क्रियाकलापों से मुक्त रख सकेंगे। सामाजिक उत्थान के लिए आवश्यक है कि उन लोगों को ही आरक्षण प्रदान किया जाए जो इसके वास्तविक हकदार हैं। किन्तु वोट की राजनीति द्वारा लागू किया गया आरक्षण मात्र तुष्टिकरण की नीति साबित हो रहा है और वर्ग विभेद को जन्म दे रहा है। वास्तविक पिछड़े गरीबों का भला तब तक नहीं होगा जब तक कि जातिगत आरक्षण में कोई आर्थिक सीमा न लगाई जाए। क्योंकि बिना आर्थिक सीमा के जातिगत आरक्षण केबल आरक्षित जातियों में एक सुविधाभोगी वर्ग तैयार कर रहा है, जो पिछड़े गरीबों को मिलने वाली सारी सुविधाओं को हजम कर रहा है एवं पिछड़े गरीबों को गरीबी की अपनी नियति मानकर केवल इस बात से संतोष करना पड़ रहा है कि उनकी जाति का अमुक व्यक्ति सत्ता के शिखर पर बैठा है।

यदि वास्तव में किसी वर्ग का उत्थान करना है तो उसका श्रेष्ठतम उपाय है कि उसे योग्यता प्रदान करने की व्यवस्था की जाए। उसमें योग्यता के सृजन की क्षमता उत्पन्न की जाए। यदि योग्यता के सृजन की क्षमता जाग्रत होगी तो वह समाज निश्चय ही प्रगति करेगा। दलित वर्ग तथा पिछड़े वर्ग को स्थायी रूप से अरक्षा एवं अपमान के मध्य जीवित हरने वाले बताकर हमारे कर्णधार समाज को विभाजित ही नहीं कर रहे हैं, बल्कि इन वर्गों को परस्पर अविश्वासी भी बना रहे हैं। वास्तव में तथाकथित वंचित वर्ग को सामाजिक उत्थान हेतु मानसिक विकास की भी अतीव आवश्यकता

है जिसे आरक्षण द्वारा परिष्कृत नहीं किया जा सकता है।
आरक्षण की नीति में योग्यता एवं प्रतिभा की उपेक्षा हुई है तथा कार्य कुशलता का ह्रास हुआ है। जातीय भावनाएं बलवती हुईं हैं तथा सामाजिक सौमनस्य पर आघात पहुॅचा है। राजनीतिक शक्ति प्रदान करना मात्र सामाजिक उत्थान नहीं है। इसके लिए नींव मजबूत करनी होगी। आरक्षण का वास्तविक उद्देश्य समाज के वास्तविक पिछड़े लोगों को अन्य लोगों के समकक्ष लाना है, जिससे समाज में समरसता पैदा हो सके। किन्तु भारतीय आरक्षण व्यवस्था काफी हद तक सम्पत्तिवान वर्ग द्वारा नियंत्रित होती है। फलस्वरूप विपरीत कथनों और प्रतिकूल कानूनों एवं प्रशासनिक उपायों के बावजूद भारतीय आरक्षण व्यवस्था दुर्भाग्यवश सम्पत्ति सम्बन्धों में ऐसे परिवर्तन लाने में असफल रही है जो भारतीय समाज में वंचित वर्गों को लाभा पहुॅचाए।
आज भी भारत का पिछड़ा वर्ग विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाला सुविधाविहीन वर्ग अन्यायपूर्ण जीवन जीने को अभिशप्त है। संवैधानिक समता के नियमों की ज्ञान ज्योति आरक्षण द्वारा नगरों और कस्बों में पहुॅची अवश्य है,परन्तु निराश्रित दलित वर्ग के जीवन–निर्वाह में आंशिक योगदान ही प्रदान कर सकी है। कदाचित यह सहभाजित न्यायालयों की चहारदीवारों में ही उलझकर रह गई है। तभी तो विधियों के क्रियान्वयन के उपरान्त भी वंचित वर्ग को दी जाने वाली सुविधाएं समताधिकारी न होकर दया, सहानुभूति व करूणा का बीज बन जाती हैं।
वस्तुतः सहृदयता से वंचित वर्ग का सामाजिक उत्थान होना चाहिए। सिर्फ आरक्षण की बैसाखियों द्वारा नहीं, वर्तमान समय की यही मॉग है। समाजवाद का आदर्श है आवश्यक सुविधाओं द्वारा समान विकास के लिए अधिक अवसर प्रदान करना। आज राजनीतिक नेतृत्व को आरक्षण की समीक्षा करने की जरूरत है जो कि समयबद्ध ढ़ंग से निश्चित समय में सामाजिक समानता के लक्ष्य को प्राप्त करे। यद्यपि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों में 50 प्रतिशत से अधिक आरक्षण को अवैध घोषित किया है। प्रोन्नति एवं एकल पदों पर आरक्षण को समाप्त किया है। अब केवल कार्यपालिका और विधायिका को इस हेतु अग्रसर होना है।

सन्दर्भ

1 कोठारी, रजनी–कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स, आरियन्ट लाग्मैन पब्लि0, न्यू दिल्ली।
2 कौशिक सुशीला–भारतीय शासन एव राजनीति, कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली।
3 कश्यप सुभाष–दलबदल और राज्यों की राजनीति, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।
4 दरडा रणजीत सिंह–भारतीय लोकतंत्र और आन्दोलन की राजनीति, लोकतंत्र समीक्षा, 1973
5 श्रीनिवास एम0एन0–कास्ट इन मार्डन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।
6 दुबे अभय कुमार–राजनीति की किताब, संस्करण, 2003
7 दैनिक जागरण–सर्व समाज का रखेगे ख्याल–मायावती, 8 जुलाई, 2013
8 मिश्र आशीष–नियंता से वन गये वोट बैंक, इण्डिया टुडे, 29 मई 2013
9 मिश्र आशीष–मजहब देखकर मुवाबजा, इण्डिया टुडे, 10 जुलाई 2013